वर्ष:3 अंक:5-7 ISSN : 2321-6131
जून, 2016

समवेत

साहित्य, संस्कृति एवं शिक्षा से संबद्ध
अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

भारतीय भक्ति साहित्य विशेषांक

संपादक
डॉ. नवीन नन्दवाना

समवेत ISSN 2321-6131

साहित्य, संस्कृति एवं शिक्षा से संबद्ध अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

संपादक :

डॉ. नवीन नन्दवाना
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

परामर्श एवं सहयोग :

प्रो. के. के. शर्मा
सेवानिवृत्त आचार्य, हिन्दी भाषा एवं साहित्य,
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

प्रो. माधव हाड़ा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ. सुनिल कुलकर्णी
सह आचार्य, तुलनात्मक भाषा विभाग,
उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव

डॉ. अखिलेश शंखधर
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर

पत्र-व्यवहार एवं संपर्क :

डॉ. नवीन नन्दवाना
ई-15, विश्वविद्यालय आवास, अशोक नगर,
उदयपुर (राज) 313001
(मो.) 09828351618, (नि) 0294-3209400
email : editordeskudr@gmail.com

आवरण चित्र :

डॉ. सुशील निम्बार्क
दृश्यकला विभाग,
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

वितरण एवं विज्ञापन प्रबंध :

डॉ. सविता नन्दवाना

सदस्यता शुल्क :

व्यक्तिगत : वार्षिक - 300 रुपये,
पंचवार्षिक - 1000 रुपये
संस्थागत : वार्षिक - 400 रुपये,
पंचवार्षिक - 1500 रुपये

इस अंक का मूल्य : 200 रुपये

कृपया सदस्यता राशि नगद/धनादेश/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा **डॉ. सविता नन्दवाना** के नाम,
ई-15 विश्वविद्यालय आवास, अशोक नगर, उदयपुर - 313001 (राज.) पर भेजें।

© संपादकाधीन

- संपादन कार्य पूर्णत: अवैतनिक है।
- प्रकाशित रचनाओं के विचार से संपादक-प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-संपादक की अनुमति अनिवार्य है।
- प्रकाशित आलेखों की मौलिकता के लिए सम्बन्धित लेखक उत्तरदायी हैं।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र उदयपुर होगा।

प्रकाशक :

हिमांशु पब्लिकेशन्स

464, हिरण मगरी, सेक्टर 11, उदयपुर 313 002 (राज.), फोन: 0294-5106166, 5106163
4379/4-B, प्रकाश हाऊस, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-2, फोन: 011-32551698, 23255920
Web : himanshupublications.com; email : himanshupublications@gmail.com

अनुक्रम

1. भक्तिकाल : पुनर्विचार की जरूरत 1
   - प्रभात कुमार मिश्र

2. मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन और दक्षिण 8
   - सूर्यकांत त्रिपाठी

3. आज का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य और कबीर 12
   - सौरभ कुमार

4. संत दादूदयाल : जीवन, पंथ और भक्ति पद्धति 18
   - नवीन नंदवाना

5. संत कवि सुंदरदास : व्यक्तित्व और जीवन मूल्य 31
   - अखिलेश चास्टा

6. संत रैदास के काव्य में सामाजिक चेतना 40
   - सुभाष चंद्र नंदवाना

7. रामस्नेही संत काव्य : आध्यात्मिक और सामाजिक सरोकार 46
   - महेश चंद्र तिवारी

8. संत जम्भेश्वर के चिंतन की वर्तमान समय में प्रासंगिकता 56
   - रामरती माँजू

9. संत कवियों की सामाजिक समरसता और मलूकदास 69
   - रंजना उपाध्याय

10. संत दुर्बलनाथ के काव्य में सामाजिक चिन्तन 74
    - सुरेश सिंह राठौड़

11. भक्ति आन्दोलन में राजस्थान की संत राणी रूपांदे का योगदान 87
    - भूमिका द्विवेदी एवं मदन सिंह राठौड़

संत कवियों की सामाजिक समरसता और मलूकदास

रंजना उपाध्याय*

संत कवियों के जीवन, दर्शन और साहित्य का मूलाधार सामाजिक समरसता ही रही है। संत कवियों के दर्शन एवं उनके चिंतन पर जब भी हम विचार करते हैं तो उसमें जो सबसे बड़ी चीज दिखाई देती है - वह है संत कवियों के विचारों की व्यापकता, जिसमें मानव-मात्र के कल्याण का भाव समाहित दिखाई देता है। वस्तुतः संत कवियों का रचनात्मक योगदान सिर्फ रचना के धरातल पर ही नहीं है बल्कि उनकी अभिव्यक्तियाँ समस्त युग-जीवन के लिए एक सशक्त सूत्र देती हैं और मनुष्य में सांस्कृतिक चेतना को जन्म देती हैं। हम सब जानते हैं कि समाज में घर कर बैठी अनेकानेक जड़ताओं ने हमेशा ही मनुष्य को बाँधा है, उसे संकीर्णताओं में जकड़ा है, इसीलिए संत कवियों की सामंजस्य को, समरसता को जन्म देने वाली दृष्टि सबसे पहले इन्हीं जड़ताओं और उनके कारकों पर पड़ती है। निस्सन्देह ये जड़ बंधन ही रहे हैं जो समाज-समाज के बीच, मनुष्य-मनुष्य के बीच समरसता के स्थापित होने में बाधक बनते हैं। संतों ने इस तथ्य को पहचाना और इससे मुक्ति की आवश्यकता पर बल दिया। तात्पर्य यह कि मनुष्य को उन्होने अपने चिन्तन के केन्द्र में रखा। इसीलिए संतों की वाणी में हम जिस चेतना को देखते हैं उसमें जड़ता के लिए कोई स्थान नहीं है। वे मानव को जीवन-जगत् के यथार्थ से रूबरू करवाते हैं और उसके माध्यम से वे जन-जन के बीच प्रेम, विश्वास, मानवता, सहयोग एवं अपनत्व के बीज को बोने का प्रयास करते हैं। वे व्यापक धर्म को लेकर चलने वाले रहे हैं, इसीलिए उनके जीवन, दर्शन एवं साहित्य में धर्म एवं सम्प्रदायगत

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

जड़ता नहीं मिलती है और उन्होंने शास्त्रीय बंधनों से भी अपने को दूर रखा है। दूसरे शब्दों में मैं कह सकती हूँ कि प्राय: सभी संत कवियों में सामाजिक सरोकारों से युक्त, मानवातावादी सोच और दृष्टि से समन्वित वैश्विक दृष्टि देखने को मिलती है।

वस्तुत: आज के समय में जबकि हिंसा, आतंकवाद और ऐसी ही न जाने कितनी विनाशकारी शक्तियाँ मनुष्य और मनुष्यता को तोड़ने में लगी हैं तब संत कवियों की वाणी हमें दिशा दे सकती है। यहाँ पर मैं अपनी बात संत कवि मलूकदास के माध्यम से कहना चाहती हूँ। वे मलूकदास जिन्होंने हमेशा मानवीय मूल्यों की बात की। उनका चिंतन एवं उनका साहित्य हमारे लिए दिशा-बोध का माध्यम बन सकता है, क्योंकि उसमें त्याग, प्रेम, करुणा, दया, संतोष एवं सहानुभूति के साथ-ही-साथ संवेदना की गहराई भी देखने को मिलती है।

संत कवि मलूकदास सामाजिक समरसता की बात करते हुए समूची दुनिया के दु:ख को स्वयं ले लेना चाहते हैं और सम्पूर्ण मानवता को सुखमय देखना चाहते हैं। अपनी सोच को वे इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं -

जो दुखिया संसार में, खोवौ तिनका दुक्ख।
दलिद्दर सौंपि मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख।।[1]

इससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि लोक-कल्याण, सामाजिक समरसता एवं सबका हित मलूकदास के लिए सिर्फ सैद्धांतिक नहीं रहा है बल्कि वे उसे जीवन में उतारते हुए दिखाई देते हैं। एक सचेत, सक्रिय हस्तक्षेप करने वाले कवि के रूप में वे अपने अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त कर जन-जीवन को यह बतलाने की कोशिश करते हैं कि बिना जीवन-मूल्यों से जुड़े न हम अपनी उन्नति कर सकते हैं, और न ही अपने समाज एवं देश की।

संत कवियों के यहाँ ज्ञान का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में ज्ञान-ज्योति जगायी जाय क्योंकि बिना ज्ञान की ज्योति के सही को भी सही रूप में नहीं देखा जा सकता है। हमारे संतों ने उस ज्ञान-ज्योति को जाग्रत करने की आवश्यकता पर बल दिया है, क्योंकि उन्हें पता था कि ज्ञान की ज्योति के जलने के बाद ही मनुष्य अपनी आत्मा की आवाज को सही अर्थों में सुन सकता है और दूसरों की पीड़ा और समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में देख सकता है। मलूकदास तो यहाँ तक कहते हैं कि जो दूसरों के दु:ख को समझ सकता है, वही व्यक्ति सच्चे अर्थों में मनुष्य कहलाने का हकदार होता है। और यह मानवीय दृष्टिकोण मलूकदास में इसलिए आता है, क्योंकि वे लोक-परम्परा से जुड़े रहे हैं और अपने पूर्ववर्ती संत कवियों की मानवतावादी दृष्टि को इन्होंने भीतर तक आत्मसात किया था

और यही वह धरातल है जो मलूकदास को सामाजिक समरसता के व्यापक सरोकारों से जोड़ता है। उन्होंने कहा है -

अपना-सा दु:ख सबका जानै, दास मलूका ताको मानै।[2]

संत कवियों ने अपने अनुभव से यह जाना था कि संसार में अनेक ऐसे आकर्षण हैं जो मनुष्य जीवन को या तो भटकाव-भरे रास्ते पर डाल देते हैं या गलत रास्ते पर ले जाते हैं। उन्हीं अनेकानेक आकर्षणों में प्रमुख हैं- धन एवं वासना। अन्य संत कवियों की ही तरह मलूकदास जी भी यह मानते हैं कि ये आकर्षण फंदे का काम करते हैं और ये फंदे मनुष्य को अपनी गिरफ्त में जकड़कर या तो सीमित कर देते हैं, या सब कुछ को गंवा देने के लिए विवश कर देते हैं। वे कहते हैं -

एक कनक अरु कामिनी, ए दोऊ बटमार।
मीठी छूरी लाइके, मारा सब संसार।।[3]

जब मैं मलूकदास के रचनात्मक पक्ष पर विचार करती हूँ तो पाती हूँ कि वे अपने समय, समाज और मनुष्य की बेहतरी के प्रति हमेशा चैतन्य दिखाई देते हैं। उनके लेखन को सिर्फ स्वांत: सुखाय का लेखन नहीं कहा जा सकता है। वे तो प्रकृति की भी बात करते हैं तब भी उनके समक्ष मनुष्य खड़ा होता है और उसके माध्यम से, उसके बहाने से वे व्यक्ति की मानसिकता को परिष्कृत करने की कोशिश करते हैं। प्रकृति उनके लिए प्रेरणादायी है, इसीलिए वे प्रकृति के माध्यम से मनुष्य को मानवतावादी राह की ओर अग्रसर होने का सूत्र देते हैं। निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि उनके विचारों में समाज-सुधार एवं लोक-कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है।

जन-जन के बीच सामाजिक समरसता तभी स्थापित हो सकती है जबकि उनके बीच ऊँच-नीच की भावना न हो। यह भावना हमारे समाज में सदियों से रही है बिना उसे समाप्त किये सामाजिक समरसता की कल्पना नहीं की जा सकती है। जन्म से ऊँच या नीच मानने की जड़ प्रथा हमारे समाज में रही है। यद्यपि ये बंधन, ये सोच आज टूट रहे हैं, लेकिन आज भी वे पूरी तरह से समाप्त नहीं हैं। जहाँ तक संतों के पक्ष की बात है, तो उसमें कोई दो राय नहीं कि संत जन्म की अपेक्षा कर्म को महत्व देते हैं। व्यक्ति की अच्छाई-बुराई, उसका ऊँच-नीच, उसका न्यायी या अन्यायी होना उसके कर्म में प्रतिबिम्बित होता है। इसीलिए संत कवियों ने कर्म को महत्व देते हुए जीवन की सार्थकता के लिए दया, माया,. ममता और करुणा से जुड़ने की आवश्यकता पर बल दिया है। वस्तुत: सामाजिक समरसता तो तब स्थापित होगी जब हृदय में दया होगी, धर्मयुक्त कर्म होगा, वाणी में संयम होगा और आँखों में लज्जा होगी। इसीलिए मलूकदास कहते हैं-

दया धरम हिरदै बसे, बोले अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन।।[4]

सामाजिक समरसता के रास्ते में एक बहुत बड़ी बाधा होती है- बाह्य आडंबरों की। क्योंकि ये बाह्य आडंबर मनुष्य-मनुष्य को बाँटने का कार्य करते हैं, उसे जकड़ने का कार्य करते हैं, उसकी सोच को संकीर्ण बनाने का कार्य करते हैं। इसीलिए जप, माला, छापा तिलक आदि को प्राय: संत स्वीकार नहीं करते हैं और उन जड़ताओं से मनुष्य को मुक्त होने की सलाह देते हैं। वस्तुत: संत कवि लोक को महत्व देते हैं। इसीलिए वे देवता को पूजने की जगह घर की चक्की को पूजने पर बल देते हैं। उन्हें तीर्थों से भी कोई लगाव नहीं रहा क्योंकि उनका मानना था कि तीर्थों में भटकता मनुष्य अपने वजूद, अपने महत्व को भूल जाता है। उनकी दृष्टि में तीर्थ तो बाहर नहीं बल्कि भीतर होता है और वह भी हर मनुष्य के भीतर होता है। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए मलूकदास ने कहा है -

हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस।
जिनके हिरदे हरि बसै, कोटि तिरथ तिन पास।।[5]

वस्तुत: संत-परम्परा से जो कुछ मलूकदास जी ने ग्रहण किया उस परम्परा की व्यापकता एवं मानवीयता को उन्होंने अपनी वाणियों में स्थान दिया और उसमें भी प्रेम और मानवीयता को सबसे ऊपर रखा। सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए वे प्रेम पर बल देते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि प्रेम ही है जो मनुष्य को मुक्ति की राह की ओर ले जा सकता है, और प्रेम ही है जो मनुष्य को मनुष्य बनाये रख सकता है। यही कारण है कि प्रेम को न छोड़ने की बात करते हैं और कहते हैं- ''प्रेम भगति नहिं छाँड़िए, जब लग घट में प्रान।''[6]

संत कवि चरित्र एवं आचरण की उच्चता पर भी बल देते हैं। उनका मानना रहा है कि बिना चरित्र एवं आचरण की उच्चता के समाज में समरसता की स्थापना नहीं की जा सकती है। संत कवियों ने अपने अनुभव से यह जाना था कि चरित्र एवं आचरण की गिरावट के साथ ही समाज में अनेकानेक विसंगतियाँ स्वत: ही जन्म लेने लगती हैं और मनुष्य अपनी परम्पराओं, अपनी मर्यादाओं एवं अपने आदर्शों को भूल-सा जाता है, स्वार्थों के घेरे में घिर कर वह भौतिक आकर्षणों के जाल में उलझ-सा जाता है और जीवन की कला से जाने-अनजाने दूर होता चला जाता है। इसीलिए प्राय: संतों की ही तरह मलूकदास भी सामाजिक समरसता को बनाये रखने के लिए और मनुष्य को मनुष्यता एवं मानवीयता से जोड़े रखने के लिए कुछ जीवन के सूत्र देते हैं और कहते हैं कि-

जब तुम आये जगत में, तब हँसिये सब कोय।
अब तुम ऐसी कर चलो, पाछे हँसी न कोय।।[7]

इस प्रकार प्राय: संतों की ही तरह मलूकदास जी भी मनुष्य को सच्चे आचरण की सीख देते हैं, पवित्रता और मानवीय कल्याण को सर्वोपरि मानते हैं, मनुष्य-मनुष्य के भीतर ज्ञान एवं मनुष्यत्व की ज्योति जलाना चाहते हैं और इसीलिए समस्त जड़ताओं को त्यागने और मानवीय उदात्तता से जुड़ने की जरूरत पर बल देते हैं। निस्सन्देह वे किसी एक व्यक्ति को नहीं बल्कि समूचे समाज को समरसता एवं मानवीयता के ऐसे पथ पर ले जाना चाहते हैं, जहाँ परोपकार एवं कल्याण से युक्त व्यापक सोच हो। सच है कि कवि मलूकदास के यहाँ समय, समाज एवं व्यक्ति की चिन्ता के साथ-ही-साथ मानवीय कल्याण की व्यापक भावना दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. बलदेव बंशी, मलूकदास, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, परिशिष्ट 1, पृष्ठ-67
2. वही, पृष्ठ-90
3. वही, पृष्ठ-59
4. वही, पृष्ठ-61
5. वही, पृष्ठ-66
6. वही, पृष्ठ-66
7. वही, पृष्ठ-71

❑❑❑